यौरोपियन शिविर और मेरा अनुभव

इस वर्ष २०१२ का यौरोपियन शिविर ५-८ अप्रेल को एमस्टर्डम में समपन्न हुआ. मुझे भी पहली बार "हिन्दू स्वंम सेवक संघ" के शिविर में सम्मलित होने का अवसर प्राप्त हुआ. कई वर्ष पहले लंदन में आयोजित "समिति की शाखा" में भाग लेने का मौका मिला था, वहाँ पर गुरुकुल जैसा वातावरण देख कर मैं बहुत प्रभावित थी और चाहती थी कि मेरे बच्चे भी ऐसे वातावरण से परिचित हों लेकिन व्यस्ता के कारण शिविर में आने का अवसर न मिल सका।

उस समय हम भारतीय शास्त्रीय नृत्य के द्वारा भारतीय संस्कृति को नार्विजियन संस्कृति से जोड़ने के प्रयास में सलग्न थे. नृत्य शैली द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रचार हो रहा था लेकिन जीवन जीने के प्राथमिक मूल्यों को अपनाने की कला शिविर में ही मिल सकती है यह मैंने शिविर में रह कर ही जाना। जहाँ सुबह की शुरुआत ईश चिंतन और प्रार्थना से होती है बौद्धिक चिंतन, चर्चा. कार्यशाला, खेल कूद संयमवंदन जैसे कार्यक्रम नवीन चेतना का निर्माण करते है। मन्त्रों की गूँज आस-पास के वातावरण में अलग तरह की उर्जा भरते है। कार्यक्रम के अन्तरगत नयी जागृति भर देने वाले गीत कई बार दोहराये जाते है " अपने घर को हम ही बनायें गोकुल सा जन-मन भावन" भोजन करने से पहले भोजन मन्त्र गाया जाता है। जो भोजन हमें मिला है, जब वह हमारी धमनियों में रक्त बन कर दौड़ता तो जीवन जीने की नयी दिशा देता है। ऐसा ओजपूर्ण वातावरण तो हमें भी अपने आस-पास भारत में भी नहीं मिला जहाँ हम पल कर बड़े हुए। भारत से दूर रह कर गुरुकुल जैसा वातावरण हमारे बच्चों को अपने आप से परिचित करवाता है, तो यह बहुत बड़ी उपलब्धि है।

योरोप में अलग-अलग देशों से आये हुए लोग जब शिविर में एकत्रित होते है तो यहाँ भाषा की कोई सीमा नही होती जिस तरह संगीत के लिए भाषा की जरूरत नहीं होती उसी तरह नैतिक मूल्यों को अपनाने भाषा रुकावट नहीं बनती, बस उसका कारण समझ में आना चाहिऐ।
हिन्दू धर्म और संस्कृति को जानने के लिए शिविर में साहित्य कम कीमत पर उपलब्ध है "भारतीय संस्कृति में ऐसा क्यों करते है" पुस्तक जितनी छोटी है उतनी ही महत्वपूर्ण भी, इस पुस्तक में वे सब आम बातें है जो हम परम्परा से पीढी दर पीढी करते चले आ रहे हैं लेकिन आने वाली पीढी को यह नहीं बताते कि हम ऐसा क्यों करते है इसलिए इन परम्पराओं से विश्वास उठने लगा है। नमस्ते क्यों करते है, पैर क्यों छूते है इसका कारण बताया नहीं जाता तभी तो अधिकतर बच्चे पैर छूने के बजाय घुटनों पर हाथ लगा कर रह जाते है। झुक कर हाथ पैरों तक नहीं पहुँचते, इसलिए सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद भी नहीं मिल पाता।

यूँ तो ओस्लो में भी "हिन्दू स्वंम सेवक संघ" का शिविर काफी सालों से लगता रहा है और बड़ी संख्या में प्रवासी भारतीय इस कार्यक्षेत्र में सक्रिय रहे है। पिछले साल २०२१ में जब योरोपियन शिविर ओस्लो में लगा तो मैं अपने नाति को लेकर समापन में शामिल हुई तो उसे बहुत अच्छा लगा, उसे अहसास हुआ कि उसके साथ के सारे बच्चे दो दिन से शिविर में रह रहे है और उन्होने उन दो दिनों में जो कुछ सीखा है वह उससे वंचित रह गया है तभी मैंने उसे आश्वासन दिया कि अगली बार जहाँ कहीं भी शिविर लगेगा मैं उसे लेकर चलुंगी।
इस वर्ष मार्च के आखिरी सप्ताह में ओमवीर उपाध्यायजी से पता चला कि २ अप्रैल को एमस्टर्डम में शिविर लगने वाला है तो मैंने अपने नाति को साथ लेकर उसके साथ जाने का

निश्चय कर लिया। मैं चाहती थी कि वह भी शिविर के अनुशासित और लोग सेवी जीवन से परिचित हो। मैं यह धारणा लेकर गयी थी कि मुझे तो सब कुछ पता है सीखने की आवश्यकता मुझे नहीं उसे ज्यादा है। सही अर्थों में गुरुकुल जैसा वातावरण उसे देखने को मिलेगा तो उसमें परिवर्तन अवश्य आयेगा।

पहले दिन शिविर में कार्यक्रम की शुरुआत पूजा से हुई अलग-अलग देशो से आये हुऐ का आपस में परिचय हुआ। भोजन, बैठक तथा दीप निमिलन के पश्चयात सभी सोने चले गये। सुबह जल्दी उठना था और ईश चिंतन के लिए सही समय पर पहुँचना था मेरा नाति दोनो दिन सही वक्त पर जगा और ईश चिंतन में दोनो दिन शामिल हुआ और मैं सोती रही।

घर आकर जब मैं शिविर के कार्यक्रम के बारे में मनन कर रही थी तब मुझे अहसास हुआ कि अनुशासन की आवश्यकता उसे नहीं मुझे ज्यादा थी। मन में रह-रह कर एक ही प्रश्न उठ रहा था कि "क्या जानती हूँ मैं अपने धर्म के बारे में? तभी मेरी नजर उस उस पत्रिका पर पडी जो शिविर में मिली थी उसमें लिखा था "उठो, जागो और चलते रहो जबतक मंजिल न मिले"।

हमने जीवन के तथ्यों को
तराजू में कब तोला
स्वीकारा है
महत्वकांक्षाओं के ज्वर ने
अंहकारो की चोटो ने
स्वंम के परिचय को भी

झुटलाया है
ईर्ष्या और द्वेष की खाई में
रोशनी आये भी कहाँ से
हम तो समझे हैं
अंधेरा है

ⓢ ऊषा चन्द्रा